विनोद-सीरीज़—१२

उसकी कहानी

६ कहानियाँ

विनोद शङ्कर व्यास
१९३३

उसकी कहानी

लेखक
विनोद शंकर व्यास

प्रकाशक

उसकी कहानी ।

१

यह कहानी सुनाने के पांच महीने बाद, वह एक दिन वेश्याओं के मकानों में आग लगाते हुए, पकड़ा गया। इसके बाद वह पागलखाने भेज दिया गया।

मैं आवारा हूँ, बदनाम हूँ, दुनिया की नजरों से गिरा हुआ हूँ। मेरी यह कहानी सुन कर लोग हँसेगे, तरस खायगें, क्या-कहेंगे? नहीं जानता। प्रति दिन प्रातः काल बिस्तरे से उठ कर पास में पड़े एक शीशे के टुकड़े में अपना मुँह देखते हुए, सोचता हूँ—२४ घण्टे का एक छोटा सा जीवन समाप्त हुआ। इसी तरह कितने जीवन नष्ट-भ्रष्ट होकर लीन युगों की समाधि बना चुके हैं।

उस घटना की गोद में सोलह वर्ष चले गये। फिर भी कल की बात मालूम पड़ती है। उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष की थी। जैसे नवयुवकों की प्रेम-कहानियाँ अपने पड़ोस और आस-पास के मकानों से आरम्भ होती हैं, ठीक उसी तरह मेरी कहानी की भी घटना है।

उसकी कहानी ।

मैं भोजन करके उठा था । जाड़े के दिनों में धूप कितनी प्यारी लगती है । मैं छत पर बैठा था । सामनेवाले मकान के मुंडेरे पर एक बन्दर हाथ में शीशा लिये अपना मुँह देख रहा था । उसको घुमाता-फिराता हुआ, वह तरह-तरह से अपना खेल दिखला रहा था । मैं बड़े कुतूहल से देख रहा था । उसी समय उमा हाथ में एक डण्डा लिए छत पर चढ़ी ।

बन्दर को डरा कर वह शीशा छीन लेना चाहती थी । लेकिन उसे देखते ही वह दूसरे मकान पर कूद पड़ा । निराश होकर एक टक उसकी ओर देख रही थी ।

मैं कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया । बन्दर मेरे मकान पर आ गया था । मैं सहसा उसकी ओर बढ़ा । उसने शीशा छोड़ दिया, वह मेरी ही छत पर गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो गया । उसका एक टुकड़ा उठा कर मैं अपना मुंह देखने लगा ।

उमा हँसती हुई चली गई ।

उस दिन से जब उमा मुझे देखती मुस्करा देती । इसके पहले अनेकों बार मैंने उसे देखा था, लेकिन वह देखना कोई देखना न था ।

स्नान करने के बाद जब मैं ऊपर छत पर अपने बालों को कंघी से सँवारता तो कभी सामने उमा को देखकर, शीशे को सूर्य की प्रखर किरणों के साथ, इस तरह नचाता जिसमें

उसका अक्स उमा के सम्मुख दौड़ता रहे ।

उसकी आँखें झलमला उठतीं। मैं अपनी जवानी की नासमझी का आनन्द लेता।

इसी तरह घनिष्ठता बढ़ती गई।

एक-एक दिन गिन कर एक वर्ष समाप्त हुआ ।

पहले संकेतों का निर्माण हुआ । फिर पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ । अन्त में उमा निस्संकोच मेरे सम्मुख आकर खड़ी हो गई, जैसे वह सम्पूर्ण भय और लज्जा की आहुति दे चुकी हो ।

इतने दिनों से प्रति क्षण जिस मूर्ति की आराधना में मैं तन्मय था, उसे एकाएक अर्धरात्रि के समय अपने कमरे में, अपने सामने खड़ा देख कर मैं निर्जीव-सा क्यों हो गया ?

उसने कहा—आज बड़ी कठिनाई से भाग सकी हूँ । फिर भी वह बूढ़ी मजदूरिन एक बार जग उठी थी । घर भर सो रहा है । अब विलम्ब न करो ।

मैंने कहा—इतनी हड़बड़ी में भाग कर कहां चलेंगे ?

उसने कहा-सीधे स्टेशन ! जहां की गाड़ी मिल जायगी, वहीं चले जायेंगे ।

मैं उसकी ओर भयभीत होकर देख रहा था । मैंने अपने साहस को एक बार सचेत करते हुए कहा—अच्छी बात है,

चलो, मैं कुछ रुपये और अपने कपड़े ले लूँ।

वह बैठ गई थी। मैं पिता जी का बक्स खोल कर रुपये निकालने के लिए ऊपर गया।

मैं बक्स खोल ही रहा था कि नीचे कोलाहल हुआ। घबड़ा कर बक्स बन्द कर दिया। पिता जी की आँखें खुल गईं।

उन्होंने पूछा—कौन ?

मैं चुप था।

वे मेरी ओर देखते हुए बोले—अरे विजय ! तू इतनी रातको यहाँ क्या कर रहा है ?

मैं कुछ भी न बोला।

वह पलंग से उठ पड़े। मुझे दोनों हाथों से दबा कर उन्होंने फिर पूछा—बोलता क्यों नहीं ?

इतने में कोलाहल बढ़ा। कोई कह रहा था—दुष्टा यहाँ पकड़ी गई।

मैं पिता जी से हाथ छुड़ा कर भागा। नीचे आकर भयानक दृश्य दिखलाई पड़ा।

पड़ोस के लोग उमा का हाथ पकड़े हैं। सब की आँखें चढ़ी हुई हैं।

मैं घर से बाहर निकल पड़ा। दौड़ता हुआ सड़क पर आया। एक तांगे पर बैठ कर स्टेशन पहुंचा।

गाड़ी पर बैठने के बाद, जब स्वस्थ हुआ, तो यही सोचता रहा कि मैं अकेला ही जा रहा हूँ, बेचारी उमा साथ न आ सकी ।

२

घर से भागने पर कई महीने कलकत्ते में बीत चुके थे । तब से उमा का कोई समाचार नहीं मिला । दिन-रात उसी की चिन्ता रहती ।

मैं कितना बड़ा अपराधी हूँ । एक नवयुवती के जीवन को कलंकित करके इस तरह उसे छोड़ भागना उचित था ?

इसी तरह के पचासों प्रश्न उठते रहते, किन्तु मैं विवश था । मैं क्या करता ?

इतने बड़े नगर में इतने दिनों तक भूलता-भटकता किसी तरह जीवन निर्वाह करता रहा । मानसिक और आर्थिक कष्टों के कारण बहुत दुबला हो गया था । अन्त में एक दिन, व्यग्र होकर मैंने पिता जी के नाम एक पत्र लिखा--उसमें मैंने अपने अपराधों पर दुख प्रकट किया था और अपनी माँ का समाचार पूछा था ।

पिता जी की कठोरता से मैं परिचित था; किन्तु माँ अवश्य बुलायेगी, ऐसा मुझे विश्वास था ।

दो सप्ताह के बाद उत्तर मिला—

मैं तुम्हारे जैसे आवारे लड़के का मुँह नहीं देखना चाहता । तुम्हें हम लोगों के समाचार की क्या आवश्यकता है ?

उसकी कहानी ।

पत्र पढ़ कर एक बार बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई । अपने ऊपर घृणा हुई । अब कोई मार्ग न था ।

मैं अपने दुर्भाग्य पर हँस पड़ा । आह ! इतनी अशान्ति क्यों ? मनुष्य-जीवन पाकर इतनी निराशा क्यों ?

उस दिन न जाने किस अज्ञात शक्ति ने मन में एक नवीन बल भर दिया । मैंने सोचा—पवन की भांति मैं अब स्वच्छन्द हूँ और जंगली पशु के समान स्वतंत्र हूँ । मुझे कुछ न चाहिए । मैं अकेला हूँ । मगर उमा का क्या हुआ ?

एक दिन हवड़ा के पुल पर खड़ा मैं मन बहला रहा था । मुझे पहचान कर एक आदमी मेरी बगल में खड़ा हो गया । मैं भी पहचान गया । वह मेरा पड़ोसी था । उसकी पान की दूकान थी ।

मैंने पूछा—क्यों ? यहां कैसे आये ?

उसने कहा—कुछ पैसा कमाने के लिए आया हूँ, भय्या !

इसके बाद मैंने घर का समाचार पूछा ।

उसने कहा—सब ठीक है ।

फिर साहस करके मैंने उससे उमा का हाल भी पूछा ।

उसने बड़ी गंभीरता से मेरी ओर देखते हुए कहा—वह तो किसी के साथ निकल गई । जहां विवाह ठीक हुआ था, वहां के लोग लड़की की बदनामी के कारण विवाह करने को तैयार नहीं हुए ।

उसकी इतनी बातों से अधिक मैं सुनना भी नहीं चाहता था। मैं यह कहते हुए हट गया—अच्छा फिर भेंट होगी।

वह चला गया। मैं एक बोझ से और हलका हुआ। मैंने मनही मन निश्चय कर लिया था कि चाहे जब भी हो उमा को न छोड़ूंगा।

लेकिन अब तो वह कल्पना भी निराधार हो गई। अनेकों तर्क-वितर्क आपस में द्वन्द करते रहे—"हो सकता है, परिस्थितियों के कारण बाध्य होकर उसे किसी के साथ निकल जाना पड़ा हो।"

जो कुछ भी हो, मेरे रोम-रोम से चिनगारियां निकल रही थीं। मैं तीन दिन तक जी खोल कर रोया। मेरी अभिलाषाओं की सम्पूर्ण विभूतियां ज्वालामुखी के विस्फोट में विलीन हो चुकी थीं।

२

दो वर्ष बीते।

इतने दिनों तक मैंने अनुभव का वह मार्ग देखा, जिस पर मनुष्य जीवन पर्यन्त चलते-चलते थक कर भी अपना रास्ता पूरा नहीं कर पाता। मैं दिन भर पैसे पैदा करता और रात को मदिरा से उन्मत्त होकर वेश्याओं के दरबार में सम्मिलित होता।

चिन्ता, दुख और मन की मलीनता, सब कुछ शराब की बोतलों से धो डालता था। उसी तरह जैसे धोबी कपड़ों को पीट-पीट कर सफेद बनाने की चेष्टा करता है।

धन के अभाव में जुआ भी खेलता था।

भयानक से भयानक कार्यों के लिये में सदैव प्रस्तुत रहता था। जीवन को सरस बनाने के लिए यह सब आवश्यक हो गया था।

उमा के बाद, किसी भले घर की स्त्री को कभी भूल कर भी देखना मेरी दृष्टि में सब से बड़ा अपराध है। मेरे इन दृढ़ विचारों ने अब मुझे शान्ति दी है।

वेश्याओं के यहाँ भी मनोरंजन में कितना निष्ठुर प्यार भरा रहता है, यह मैं भली भांति समझने लगा था। इसी से किसी के यहां पालतू बन जाना मेरे लिए बड़ा कठिन था। आज यहां, कल वहां। यही क्रम चलता रहा।

उस दिन दफ्तर से सन्ध्या समय जब लौटा तो द्वार पर दरवान ने कहा–बाबू आपकी एक चिट्ठी कल डाकिया ने दी थी; लेकिन भेंट न होने से आपको न दे सका।

मैंने कहा–देखूं।

मैं पत्र पढ़ने लगा। मेरी मां ने किसी से लिखवाया था– "तुम्हारे पिता जी बहुत बीमार हैं, पत्र देखते ही चले आओ।

डरने की कोई बात नहीं है ।"

बहुत दिनों के बाद मैं घर पहुंचा । देखा, वास्तव में पिता जी रोग शय्या पर पड़े थे । मैं उनका चरण मस्तक से लगा-कर रोने लगा ।

उनकी भी आंखों से अश्रुधारा बह रही थी ।

इतने में माँ आईं, वह मुझे ऊपर ले गईं । मेरे अपराध चमा की चादर में ढाँक दिये गये ।

कई दिनों तक तो संकोच और लज्जा के कारण मैं पड़ो-सियों और इष्ट-मित्रों से मिल न सका । मगर कितने दिन इस तरह छिपा हुआ रहता ?

किसी तरह मन को दृढ़ बना कर मिलना-जुलना आरम्भ किया । दो एक मित्रों से उमा का भी हाल सुना । एक ने तो व्यंग्य में यहां तक कह डाला—वाह यार ! तुम्हारी प्रयसी तो किसी दूसरे के हाथों जा टपकी और तुम यों ही टापते रह गये ।

मैंने मौन होकर आँख झुका लीं । चार वर्ष के भीतर मैं उमा को भुला बैठा था, लेकिन यहां आकर उसकी स्मृति जाग उठी थी ।

मन की गति बड़ी चंचल हो गई—"मैं घृणा की भावना में डूब कर भी दर्द भरी आहों को क्यों बटोरता हूँ ? उदास होकर भटकता रहता हूँ । कोई उत्साह न रहा । फिर क्या

वेश्याओं के हाथों आत्म-समर्पण कर दूँ ? यही ठीक है ।"

मेरे भविष्य के कार्यक्रम को सुन्दर बनाने के लिए, सौभाग्य से, पिता जी का देहान्त हो गया । संग्रहणी से वह बच न सके । वकालत में पचासों हज़ार की सम्पत्ति पैदा कर गये थे । सब मेरे हाथ लगी ।

दो महीने तो मैंने सन्तोष के साथ व्यतीत किये । अन्त में एक दिन खूब शराब पीकर नगर की वेश्याओं का अन्वेषण किया । उमर खैयाम की रुबाइयों की तरह उनके अनेकों संस्करण देखे ।

रात को दो बजे जब घर लौटा तो घण्टों पुकारने पर नौकर ने द्वार खोला । माँ जग उठी थीं ।

उन्होंने क्रोध से पूछा—क्यों रे, इतनी रात तक कहां रहा ?

मैंने कहा—माँ, मैंने शराब पी है । वेश्या के यहां गया था...हा...हा...हा तुम्हारा पुत्र कितना होनहार है ! प्रसन्न हो जाओ—माँ !

माँ ने समझा मैं नशे में हूँ । वह चुप हो गईं, एक शब्द भी न बोलीं ।

मैं अपने कमरे में जा कर सो गया । दूसरे दिन अपनी स्पष्टवादिता के प्रति मुझे प्रसन्नता हुई । मैं स्वच्छन्दता पूर्वक लोगों से स्पष्ट कहता हुआ, दुष्कर्मों की ओर बढ़ा ।

माँ मेरे प्रति उदासीन रहा करती थीं। प्रायः कई दिनों पर बोलतीं। एक दिन भोजन करके जब मैं उठा तो बोलीं—विजय, तूने अपने बड़ों का खूब नाम रखा है। तेरे जैसी सन्तान भगवान किसी को न दे।

मैंने हँसते हुए कहा—माँ! इस जीवन में भला-बुरा क्या है, इसका निर्णय मैं नहीं कर सका हूँ। पाप-पुण्य का क्या परिणाम होता है, कौन जानता है? सबको मरना होगा। यही एक सत्य है।

उनकी आँखों में आंसू उमड़ रहे थे। मैं वहां से हट गया।

माँ ने मेरे विवाह के लिए भी चेष्टा की। उन्होंने सोचा होगा कि विवाह के बाद सम्भवतः मैं सुधर जाऊँ और गृहस्थ बन जाऊं, किन्तु मेरे जैसे प्रसिद्ध आवारे के साथ कौन अपनी लड़की का विवाह करता?

मैं भी व्यर्थ की झंझटों से बच गया।

४

पैसा भी कैसी सुन्दर चीज है!

संसार के समस्त वैभव और ऐश्वर्य इन्हीं पैसों के हाथ बिके हैं। जी खोल कर जो चाहें कर लें।

पिता के देहान्त के बाद पाँच वर्ष तक मैं सिर्फ इन पैसों का खेल देखता रहा। इसी बीच में माँ भी चल बसी थीं। अब एक तिनके का भी सहारा न था। मित्र और परिचितों

का वर्णन करना एक दम व्यर्थ मालूम पड़ता है, क्योंकि उन सभी झूठी सहानुभूति प्रगट करनेवालों को मैं चापलूस कुत्ते से अधिक महत्त्व नहीं देना चाहता।

जो कुछ भी हो—पैसे की झनकार पर नृत्य करने वाली सौन्दर्य की पुतलियों ने मेरे हृदय में उत्साह का प्रबल प्रवाह बहा दिया है। मैं तन्मय होकर उनकी क्रीड़ा देखता हूँ। उनके माँ-बाप, भाई-बच्चे सभी तृषित नयनों से उस चमाचम की प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिर मैं किसके लिए, इन अपराधों के आविष्कारक काँचन को सम्हाल कर रखूं ? इसीलिए पैसों से ममता न बढ़ सकी।

इतने दिनों के बाद केवल एक मकान भर शेष बचा था। मैंने कभी इसका दुःख अनुभव नहीं किया कि मैंने पैसों को ठुकरा कर नासमझी की है। फिर यह मकान किसके लिए छोड़ूं ? उसे भी बेच कर शराब का बोतली में भरने लगा।

मेरी आयु ३६ वर्ष की संख्या गिन रही थी।

कभी-कभी शराब पीकर मैं अकेला घूमने निकल जाता था। उस दिन पाँच मील के लगभग टहलता हुआ चला गया था। यह वही सड़क थी, जो पेशावर तक चली गई है। शेर-शाह के बाद कितनी ही सल्तनतें इसकी धूल उड़ा चुकी हैं। मैं कहाँ तक जाऊँगा, यही सोचता हुआ सिगरेट निकाली।

सलाई का बक्स जेब में न था । मार्ग की दूकान पर रुका ।

मैंने सलाई माँगी ।

एक कान्तिहीन पुरुष बैठा था । उसके पास दो बच्चे सो रहे थे । और पास में ही बैठी वह स्त्री कपड़ा सी रही थी ।

पुरुष ने कहा–सलाई दो ।

"केवल सलाई ?" कहते कहते वह जैसे मुझे पहचानने लगी । भैरवी की तरह उसकी आकृति बन गई ।

मेरा नशा उतर चुका था । मैंने भयभीत होकर देखा–आह, यह तो उमा खड़ी है । इतना परिवर्तन होने पर भी वह छिपी न रह सकी । उसका रूप, स्वास्थ्य और आकृति, सब कुछ नष्ट हो चुका था । वह ठीक मुझे सड़क के किनारे गड़े हुए उस पत्थर की तरह मालूम पड़ी, जिसमें मीलों की संख्या के अक्षर अंकित रहते हैं, जिससे पथिक यह समझ लें कि कितना मार्ग वह समाप्त कर चुका ।

"आह, उमा–" इतना मुंह से निकलते ही मैं दौड़ पड़ा । फिर मुड़ कर उसे देखने का साहस न हुआ ।

५

उमा को देखकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया था ।

उसकी कहानी ।

कोलाहल, चिन्ता और उदासी सभी ने न जाने कहां से एक साथ मिल कर आक्रमण किया था ।

रात आधी बीत गई थी । मैं संगीत की स्वर लहरियों में उमा की छवि अन्धकार के आवरण में खोज रहा था ।

गायिका गा रही थी—मो सम कौन कुटिल खल कामी ...

उसके गाने पर मेरा ध्यान न था । मेरे सामने वही घटना थी—बन्दर शीशा लेकर भागा था । उमा छत पर खड़ी है । मैं शीशे के टुकड़े में अपना मुंह देख रहा हूँ ।

मैं उठा । वेश्या आश्चर्य से देखने लगी । मैंने उसके कमरे में टँगे बड़े शीशे को तोड़ डाला ।

वहां सब मेरी ओर क्रोध से देखते हुए कहने लगे—अरे, यह क्या किया ?

मैं चुपचाप भागा ।

अब यही सोचता हूँ कि उमा के यहां चल कर यह सलाई का बक्स ले आऊं और आग लगा दूं—इस समस्त विश्व में, लोग जलते रहें...हा...हा...हा...खूब जलें और इस सृष्टि का विध्वंस हो—हा—हा—हा—

कल्पनाओं का राजा

वह महीनों से अपने घर से बाहर नहीं निकला था। उसे किसी से मिलना, हँसना, बोलना कुछ भी पसन्द न था। पड़ोस के लोग उसके रहस्य-पूर्ण जीवन की बातें समझने में असमर्थ थे। उन्हें अनेक चेष्टाओं के बाद भी यह पता नहीं लगा कि वह कौन है? कहां से आया है? और क्या करता है?

उसकी दिनचर्या भी बड़ी विचित्र थी। वह दिन-भर सोता रहता। पता नहीं कितने दिनों से उसने प्रभात के समय उगते हुए सूर्य की बिखरी हुई किरणों को नहीं देखा था। वह पलंग पर पड़ा झपकियाँ लेता, कभी उठ बैठता, फिर मुँह ढँक-कर पड़ा रहता। ऐसा ही उसका कार्यक्रम था।

उसके सम्बन्ध में लोगों ने बहुत तरह की बातें फैला रखी थीं। कोई कहता—वह किसी देश का राजकुमार है, जो अपने भय से भाग कर चला आया है। एक ने तो इस घटना का समर्थन यहां तक किया कि उस के राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारी

उसे मनाने, समझाने के लिए आये थे, लेकिन उसने किसी की भी न सुनी—किसी की न मानी !

किन्तु, लोगों को यह विश्वास हो गया था कि किसी समय वह बड़ा धनवान् था और पैसों को लुटाने में उसने कभी हाथ नहीं खींचा, लेकिन स्वार्थी पुरुषों की माया में उसका सब कुछ चला गया। इसीलिए किसी से बोलना, मिलना, हा-हा करना उसे अच्छा नहीं लगता। वह अपनी ही धुन में मस्त रहता है।

जो कुछ भी हो, उसका चौड़ा मस्तक, लम्बी नाक और बड़ी-बड़ी आंखें अपनी विशेषताओं का स्वयं परिचय देती थीं।

इधर तीन दिनों से भावों का वेग बड़ी तीव्र गति से उसके हृदय में उथल-पुथल मचा रहा था।

अगणित पगडण्डियों को पार करके थका हुआ पथिक, जब विश्राम के लिए कहीं अलसाया हुआ सोचता है कि कितने बीहड़ मार्गों को कुचलता, ठुकराता हुआ, वह यहां तक पहुँच सका है। लेकिन अब वह कहाँ जायगा ? क्या करेगा ? यह समस्त जीवन यों हीं भटकते ही बीत जायगा ? वह आज इन्हीं प्रश्नों को न जाने किससे पूछना चाहता है।

"देखो न, ऊपर आकाश अपने विशाल नेत्रों से दिन

और रात जागकर, संसार की आहों को बटोरता है, और यह पृथ्वी असंख्य मानव, जड़, जीव जन्तु और कीट-पतङ्गों की जननी, कितनी उदारता से अपने वक्ष-स्थल पर सुलाये हुए प्यार की थपकियां देकर, जलाकर राख कर देती है। सिकता के एक कण में कितनी ईर्ष्या, कितना द्वेष, जलन, अभिमान, प्यास और न जाने क्या-क्या भरा रहता है।" कहते-कहते वह पलंग से उठकर कमरे में टहलने लगा।

जाड़े की रात सॉय-सॉय करती हुई, उत्तर देने की चेष्टा कर रही थी।

"इस सम्पूर्ण सृष्टिका उद्देश्य, कौन बता सकता है? अवश्य ही निर्माता का खिलवाड़ है। खिलवाड़ में भी निष्ठुरता है, कठोरता है, उँह! कैसी विडम्बना है!" कहकर अपना मुँह बनाते हुए, कमरे में टंगे हुए, एक बड़े शीशे में अपनी तरह-तरह आकृति बनाकर वह स्वयं अपने को देखने लगा।

पास में चमड़े का एक बक्स रखा था। उसमें शराब की एक बोतल पड़ी थी। इधर बहुत दिनों से उसने मदिरा नहीं पी थी, क्योंकि उससे भी एक तीव्र नशे की खुमारी में उसके दिन उलझे हुए थे।

आज बक्स से बोतल निकाल कर उसने अपने सामने

रखा; जैसे किसी एक नवीन कल्पना का वास्तविक रूप देखने के लिए वह उठ खड़ा हुआ। उसने बोतल अपने बगल में ली और चुपचाप घर से चलने के लिए प्रस्तुत हुआ। उसका बूढ़ा सेवक द्वारपर ऊँघ रहा था । उसे देखकर खड़ा हो गया, बड़ी उत्सुकता से उसकी आँखें कुछ पूछना चाहती थीं ।

काल्पनिक ने कहा—मैं जाता हूँ, रात में लौटकर नहीं आऊंगा ।

सेवक ने मस्तक झुकाकर उसकी बातें सुनीं । वह उसके स्वभाव से परिचित था ।

काल्पनिक को यह मालूम था कि नगर से दो मील दूर पर सुन्दर स्त्रियोंका एक समुदाय है, जहां पुरुष अपने मनोरञ्जन के लिए उन्हें पैसों से पालते हैं, और वेश्या के नाम से उनका सम्बोधन करते हैं ।

वह उसी मार्ग की ओर जा रहा था। रजनी ने दूसरे पहर में पदार्पण किया । कुत्ते भूंक रहे थे । चारों ओर सन्नाटा था । शीतकाल की रजनी अपने पहले पहर में ही गृहस्थ दूकान-दारोंको छुटकारा दे देती है । दुकानें सब बन्द हो गयी थीं ।

वह चलते-चलते रूप के हाटमें पहुंचा । इस भयानक शीत में भी पैसों के नामपर हाट आलोकित था । काफी चहल-पहल

थी । वह एक-एक मकान के सामने खड़ा होकर देखता हुआ, आगे बढ़ा । किसी ने मुसकराकर उसे आकर्षित करना चाहा, किसी ने हाथसे सङ्केत किया और किसी ने रूमाल हिलाकर ! इस तरह अनेकों विधियों से सबों ने अपना-अपना कौशल दिखलाया; लेकिन वह आगे ही बढ़ता गया । अन्त में एक जगह जाकर वह खड़ा हो गया । उसे यह ज्ञात होगया कि हाट की सीमा का यहीं अन्त होता है और यह अन्तिम मकान है । उसने ऊपर देखा, एक ढली हुई आकृति दिखलायी पड़ रही थी ।

दोनों ने एक दूसरे को देखा । दोनों चुप थे । न कुछ प्रदर्शन था, न कोई सङ्केत ! उसने सोचा यह अन्तिम है, इसके साथ ही यह हाट समाप्त होती है ।

उसने मकान में प्रवेश किया । सीढ़ियों पर चढ़ते हुए, वह कमरे के सामने आ गया । वेश्या ने खड़े होकर उसका स्वागत किया । वह भीतर गया । एक मसनद के सहारे बैठ गया । सामने बोतल रख दी ।

वेश्या की अवस्था ढल रही थी । उसकी आँखों के आसपास की लकीरें अपने बीते हुए दिन का परिचय दे रही थीं । आगन्तुक की ओर कुतूहल से वह देखने लगी । वह जैसे स्वप्न-लोक में चली गई हो ।

युवक ने पहला प्रश्न पूछा—आप शराब पीती हैं?

"........आप को सब तरह से प्रसन्न रखना ही मेरा कर्तव्य होगा।"

"हूँ......यदि इसके पहले कभी न पी हो, तो मेरा कोई विशेष आग्रह नहीं होगा।"

"जीवन में बहुत थोड़े ऐसे अवसर मुझे मिले हैं।"

"तब ठीक है, दो कांच के ग्लास मँगाओ।"

बोतल खोली गई। दोनों ग्लासों में उसने बराबर-बराबर उड़ेली।

युवक ने अपनी जेब से कुछ चांदी के सिक्के निकाल कर उसके सामने रख दिये। उसने कहा—आप जो मेरे लिए समय नष्ट करेंगी उसका यह पुरस्कार है।

उसके इस उदारता पूर्ण व्यवहार के कारण उस वेश्याको सिक्कोंके उठाने में सङ्कोच हो रहा था।

युवकने ग्लास अपने हाथ से उठाकर उसे देते हुए कहा—"हूँ!..."

उसने ग्लास ले लिया। दोनों ने एक-साथ उठाया।

युवक एक साँस में ही सब पी गया। मदिरा के आवेश में उसे कुछ बोलने की इच्छा हुई। उसने कहा—मैं आज तुम्हें अपने जीवन की एक घटना सुनाऊंगा। सुनोगी?

वेश्या मुग्ध होकर उसकी ओर देख रही थी। मदिरा की एक घूंटने उसे और समीप लाकर बैठा दिया।

युवक ने कहना आरम्भ किया—

"अपनी जवानी के अल्हड़पन में मैंने अपनी एक प्रेमिका बना ली थी। वह बड़ी सीधी, बड़ी कठोर और आकर्षक थी। वह पहली ही बार मुझे देखकर मेरे हाथों बिक गयी थी। मुझे एक बार देखकर उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता था। वह दिन-रात यही चाहती कि मैं उसकी आंखों से दूर न होऊं। अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ लगाकर भी वह मुझे प्रसन्न करना चाहती थी। दिन-पर-दिन जाने लगे। जितना ही अधिक वह मुझे प्यार करती, मैं उससे दूर रहने की चेष्टा करने लगा। मैं उसके लिए अमृत था, लेकिन वह मुझे विष की प्याली के समान प्रतीत होने लगी। उसने मेरा सब कार्यक्रम बिगाड़ दिया। मैं प्रतिदिन सूर्योदय के पहले उठता था। मेरे कार्य और परिश्रम को देखकर लोग आश्चर्य करते थे। लेकिन वही एक कारण हुआ, जिसने दिन-रात मुझे सोना सिखलया, उसने मुझे बेकार बनाया, उसने मेरा शरीर दुर्बल बनाया, उसने मुझे घृणा सिखलायी और उसने ही मुझे शराब पीने के लिए बाध्य किया। मैं साहसी था, उसने मुझे कायर बनाया। ऐसी ही मेरी वह

प्रेमिका थी।" इतना कहकर काल्पनिक ने बोतल से मदिरा दोनों ग्लासों में ढाली। वेश्या ने पीने में उसका साथ दिया।

वह उसी तरह कहता चला गया—"मेरी अवस्था बढ़ने लगी। मेरा उत्साह शिथिल होने लगा! मेरा अब उसके प्रति आकर्षण कम होता जा रहा था। मैंने एक दिन उससे कहा—'मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध अब स्थायी नहीं रह सकेगा। तुम मुझे क्षमा करो।'

उसने बड़ी दृढ़ता से कहा—"तुम्हारे साथ ही मैं अपना प्राण दूंगी।" मैं सचेत हो गया। मैं उसे भुलाकर शराब पीने लगा। एक दिन मैं आत्म-हत्या करने के लिए प्रस्तुत हुआ। मैं अपने जीवन से ऊब गया था। मेरे लिए संसार में कोई सुख नहीं था। मरना ही मेरा अन्तिम लक्ष्य था। मैं सब सामग्री लेकर बैठा था। मेरे द्वार पर किसी ने खटखटाया। मैंने पूछा—कौन है?

उसने कहा—मैं

मैं उसके स्वर को पहचान गया। मैंने कहा—क्या है?

उसने कहा—चलो।

मैंने कहा—कहां?

उसने कहा—मेरे साथ!

मैंने कहा—क्षमा करो, तुम्हारे ही कारण आज मैं

अपने जीवन का अन्त कर दूंगा ।

उसने कहा—यह तुम्हारा भ्रम है, बोतल लेकर चलो, शीघ्रता करो । उसके स्वर में शासन था । मैं कैसे अस्वीकार करता । तैयार हो गया । बोतल लेकर निकला...

इतना कहकर युवक ने फिर बोतल का शेष अंश दोनों पात्रों में भर दिया और पीने लगा । बोतल समाप्त हो गयी ।

वेश्याने नशे के आवेश में पूछा—तब क्या हुआ ?

युवक ने कहा—बस, अब आगे न कहूँगा । मैं जाता हूँ ।

वेश्या ने उन्मत्त स्वर में कहा—नहीं प्यारे, मैं तुम्हें न जाने दूँगी ! अभी दो घड़ी रात बाकी है । इस समय तुम कहाँ जाओगे ? मैं तुम्हें प्यार करूँगी ।

युवक ने कहा—संसार में मनुष्य एक-दूसरे को भ्रम के आवरण में छिपा रखना चाहते हैं । कौन किसको प्यार करता है ? यह सब व्यर्थ है । क्या तुम मेरी प्रेमिका से अधिक मुझे प्यार कर सकोगी ?

वेश्या ने कहा—इस समय तुम्हारा जाना ठीक नहीं है । मान जाओ ।

युवक ने कहा—आज मेरी उसी प्रेमिका का अन्तिम संस्कार है, मुझे जाना ही होगा । कोई भी शक्ति मुझे रोक नहीं सकती ।—कहते हुए वह उठ खड़ा हुआ और चला गया ।

वेश्या सचमुच एक ऐसे स्वप्न से उठकर जागी थी, जिस स्वप्न में उसका सब-कुछ चला गया हो ।

*　　　*　　　*

दस वर्ष बीत गये ।

वह वेश्या प्रति दिन उसकी प्रतीक्षा में अपनी आँखें बिछाये रहती थी । उसे विश्वास था कि किसी दिन फिर वह अपनी प्रेमिका से लड़-झगड़ कर उसके यहाँ अवश्य आवेगा । लेकिन फिर कभी वह लौटा नहीं ।

आज भी वह अपनी सन्तानों के बीच में बैठकर अपने एक रात्रि के प्रेमी की कहानी, कल्पना से उसे और भी विशाल बनाकर कहती है ।

वेश्या को यह नहीं मालूम हुआ कि उस अपरिचित युवक की प्रेमिका का नाम वासना था, और उससे लड़कर फिर कभी कोई कहीं नहीं जाता ।

कलाकारों की समस्या

१—अरविन्द

उसकी बड़ी बड़ी आँखें और नाक विशेषताओं से सम्मेलन कराती थीं। आकाश की तरफ़ देखनेवाला और शून्य में अपनी कुटिया बनानेवाला कवि आज बीसवीं सदी के कोलाहल में अपनी वासनाओं के विशाल भवन में प्रलोभनों का द्वार खोले बैठा है। वह चाहता है कीर्ति, यश; दुनिया उसकी कविता को पढ़ कर उसके प्रति सम्मान प्रकट करे।

उसके मरने के पचास वर्ष बाद, मनुष्य की बुद्धि का निरन्तर विकास होते रहने पर, उसकी कविताओं के प्रकाश की ज्वाला आसमान तक ऊँची चली जायगी, और तब उसकी आत्मा उसी शून्य में लिपट कर उस ज्वाला से पूछेगी-क्या उसी मनुष्य-समाज में अब दूसरी बार उत्पन्न होने का मुझे फिर निमंत्रण देने आई हो?

उसकी आत्मा कहेगी—मनुष्य जीवित मनुष्य को समझने की चेष्टा नहीं करता। वह मृतक है, वह मरे हुए लोगों से

भय खाकर उनके प्रति सम्मान प्रकट करता है। मरने पर ही मेरा सम्मान है। अब मुझे जीवन नहीं चाहिए।

कभी कभी ऐसी बातों को सोचते रहने का अरविन्द का स्वभाव था। इन विचार-धाराओं से अलग होकर वह एक ऐसे संसार के सामने अपने को खड़ा देखता जो अपनी भौंह सिकोड़ते हुए व्यङ्ग्य कर रहा था। फिर भी वह भूखों मरकर अपने विश्वास की छाया में लुक-छिप कर वीणा बजा रहा था।

उदय ने एक पत्रिका के कुछ पृष्ठों को दिखाकर अरविन्द से कहा—तुम्हारी कविताओं की इसमें आलोचना है।

अरविन्द ने कहा—हूँ,······पढ़ ली है।

उसकी आँखों के सम्मुख ये पंक्तियाँ स्पष्ट हो गईं—"छन्दोभङ्ग है। भाषा शिथिल है। व्याकरण की अशुद्धियाँ हैं। भावों में इतनी विलासिता भरी है कि उसकी छाया को छूकर ही मनुष्य अपना सर्वस्व खो बैठेगा। वास्तविक जगत् की यथार्थ बातों का निचोड़ चाहिए। कवि की यह सब कल्पना व्यर्थ है। समय की गति में बहो। तुम्हारी पतली-दुबली, गुलाब की पँखुरियों सी सुन्दर आराध्य देवी का वर्णन संसार इस समय नहीं चाहता। रोटी-दाल का प्रश्न है।"

"ऊँह"—कहकर सदैव ही अरविन्द इस मार-मार, किट-

ष्क्रिट से दूर रहता है। उसे कोई परवा नहीं थी। वह अपनी धुन में गाता जाता है, उसकी कविता के स्वर समस्त वायु-मंडल में गूँज उठते हैं।

एक बार प्रभात के बाल रवि से उसने अपने जीवन का मेल कराया था। उसमें तीव्रता नहीं थी, धधकती ज्वाला नहीं थी, और संसार को भस्म कर देने वाली आग नहीं थी, उसने कहा—ऊँचे उठो ! आकाश का वह लम्बा-सा रास्ता दिन भर में समाप्त कर जाना होगा और तब तुम धुँधले से शिथिल कंकाल मालूम पड़ोगे—उठो !

अरविन्द की रचनाओं में आकाँक्षाओं के करुण रुदन की पुकार भरी हुई थी। एक दिन बरसाती नदी के समान अपने हृदय में, लहरियों के साथ कल्लोल करते हुए, उसने एक छवि देखी थी। ऋतुओं के आने-जानेवाले दिन, उसकी स्मृति-रक्षा में अब तक अपनी पवित्र ग्रन्थियाँ बाँधे हुए थे। आज भी एकान्त में चुपचाप बैठ कर—न जाने कैसी आकृति बना कर, वह क्या क्या सोचता रहता है। उसके होंठ काँपने लगते हैं। उसकी आँखें स्थिर हो जाती हैं। तब वह कुछ शब्दों को अपनी लेखनी से दौड़ाता रहता है।

लोग यह भी कहते हैं कि उसकी कवितायें अमर हैं—साहित्य की स्थायी-सम्पत्ति हैं। लेकिन वह इन सब विशेष-

ताओं को नचाता हुआ हा-हाकार करता है। अभाव के पंजे में जकड़ा रहता है।

ऐसा ही नवीन युग का कवि यह अरविन्द है।

२—चन्द्रनाथ

अस्ताचल पर डूबती हुई सन्ध्या के हृदय की रङ्गीन स्याही को भावनाओं की प्याली में भरकर चन्द्रनाथ चित्र अङ्कित करता था। वह चित्रकार था।

अपनी शक्तियों को उसकाने के लिए, उसे कभी-कभी शराब, सङ्गीत और मोटर की आवश्यकता पड़ जाती थी। स्त्रियों की ओर उसका विशेष झुकाव नहीं था। वह सौंदर्य का उपासक तो अवश्य था, लेकिन उस सौंदर्य को अपने आवरण में ढँकना पसन्द नहीं करता था।

चन्द्रनाथ कहता, स्त्रियाँ झन्झट, चिन्ता और कोलाहल की चिनगारियाँ हैं। स्त्रियों के प्रति ऐसा भाव होते हुए भी वह बन्धन में जकड़ा हुआ था। सम्भवतः इस बन्धन के कारण ही उसके हृदय में ऐसे विचार स्थिर हुए हों। किन्तु जो कुछ भी हो चन्द्रनाथ क्षणिक बुद्धि का व्यक्ति था। कभी-कभी अपनी स्त्री से वह बिगड़कर अपना भयानक रूप दिखलाता—बड़बड़ाता हुआ घर से बाहर निकल जाता और

कभी हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से क्षमा याचना करता। वह यह भी कहता कि यह विजया न होती तो आज मैं बेकार लावारिस होकर सड़कों पर भटकता फिरता, मेरा कहीं भी ठिकाना न लगता और मेरे जैसे-स्वभाव के आदमी का साथ निबाहना उसी का काम है।

अभी कल की घटना है। वह शराब पीकर घर लौटा था, कुछ पैसों के लिए। उसने बहुत दीन भाव से याचना की थी। लेकिन उसकी पत्नी ने अत्यन्त रूखे शब्दों में कहा—तुम दुनियाँ की सब बातें समझते हुए भी इतने नादान बने रहते हो, यह कैसी विलक्षण बात है? तुम्हें मालूम है कि मकान वाले का तीन महीने का किराया, पानवाले, दूधवाले और उस बनिये को कितने रुपये देने हैं? दो दिन हुए इतनी कठिनाई में एक चित्र का मूल्य मिला और उसे नष्ट करने की धुन तुम्हें सवार हो गई।

चन्द्रनाथ उसकी ओर देखता रहा। अन्त में जब उसने देखा कि वह किसी तरह भी रुपया देने के लिए प्रस्तुत नहीं है, तब उसने कहा—तुम्हारी ये सब उपदेश की बातें मुझे पसन्द नहीं हैं। मैंने पचास बार तुम्हें समझा दिया कि मेरे मार्ग में कभी बाधा न डाला करो। मैं जो कुछ करूँ, करने दो। जब मैं शराब से उन्मत्त होकर भटकूँगा तभी भावनायें

मेरे सम्मुख आवेंगी और तब "मूड" में आकर मैं चित्र बनाना आरम्भ करूँगा। फिर तुम देखोगी कि पैसों की कमी न रहेगी।

विजया ने तर्क करते हुए कहा—लेकिन तुम तो सब इसी तरह पीकर नष्ट कर देते हो और काम में मन भी नहीं लगाते। कितने अधूरे चित्र पड़े हुए हैं और तुम उन्हें पूरा भी नहीं बना पाते।

चन्द्रनाथ नशे की खुमारी में कहने लगा—मुझे दुख है, विजया! तुम एक आर्टिस्ट की मनोवृत्तियों को नहीं परख सकती हो। मैं दो ही स्थितियों में काम कर सकता हूँ। या तो मेरे पास जूते की ठोकरों से फेंकने के लिए रुपये हों या फिर भोजन तक का प्रबन्ध न हो। तभी मैं काम कर सकता हूँ। लेकिन तुम्हारे कारण इन दोनों स्थितियों में से एक को भी मैं नहीं अपना सकता। इस में मेरा क्या दोष है?

विजया ने दुखी होकर कहा—तब क्या मेरा ही दोष है? तुम्हारे लिए, सब तरह कष्ट उठाते हुए भी तुम्हें सुखी न बना सकी, यह मेरा दुर्भाग्य है। कहते-कहते उसकी आँखें छल-छला पड़ीं।

चन्द्रनाथ ने गर्दन सीधी करते हुए कहा—दुर्भाग्य तुम्हारा नहीं, इस भूमि का, इस देश का है, जहाँ हम लोग उत्पन्न

हुए हैं। एक कलाकार की यही प्रतिष्ठा है? यदि मैं पाश्चात्य देशों में पैदा हुआ होता तो मेरे एक एक चित्र हजारों के दाम में बिकते, लेकिन यहाँ कोई दस-पाँच भी देनेवाला कठिनाई से मिलता है। इस में न तुम्हारा दोष है, न मेरा।

इतना कहते हुए चन्द्रनाथ विजया के आँचल से उसके आँसू पोंछते हुए कहने लगा—लाओ, दो। अब विलम्ब न करो।

विजया ने कुछ रुपये लाकर चन्द्रनाथ के हाथ पर रख दिये।

चन्द्रनाथ ने प्रसन्न होकर कहा—मैं बारह बजे रात तक लौटूँगा। तुम सो जाना। मेरी प्रतीक्षा न कर करना। मैं द्वार खोल लूँगा।

वह चला गया।

विजया अपने पलँग पर पड़ी सोचती रही कि यह कला कौन सा जन्तु है।

३—उदय

उस दिन रविवार था। उदय का दफ्तर बन्द था। एक सप्ताह के कठिन परिश्रम के बाद एक दिन का विश्राम मिलता था। इसलिए इसका बड़ा महत्व था। रविवार के दिन चन्द्र-

कलाकारों की समस्या

नाथ की बैठक में काफ़ी चहल-पहल रहती। दिन भर ताश चलता रहता।

उदय भोजन करके दोपहर में चन्द्रनाथ के यहाँ आया। अरविन्द भी वहीं बैठा था। कुछ और लोग भी थे।

उदय ने कहा—भाई, आज चार बजे तक मुझे एक बार दफ़्तर जाना होगा। छुट्टी के दिन भी सब छोड़ना नहीं चाहते।

चन्द्रनाथ ने कहा—तब क्या तुम भाँग-बूटी के समय नहीं रहोगे?

उदय ने उदासीनता से कहा—क्या करूँ? नौकरी का प्रश्न है। घोर परिश्रम करके भी चैन की नींद नसीब नहीं। नाम के लिए एक पत्र का सहकारी सम्पादक हूँ। दिन भर प्रूफ़ देखता हूँ, लेखों का संशोधन करता हूँ, पत्रों का उत्तर देता हूँ, ग्राहकों का नाम रजिस्टर पर चढ़ाता हूँ। पीर बवर्ची, भिश्ती खर वाला हिसाब है। इस पर भी संचालकों की दृष्टि सीधी नहीं रहती। पता नहीं, वे लोग यह भी चाहते हों कि उनका लड़का भी खिलाया करूँ और घर का सौदा भी ला दिया करूँ।

चन्द्रनाथ ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—यह सब व्यर्थ है! छोड़ो नौकरी। इस तरह नहीं चलेगा। भाँग छान कर चुपचाप मौज लो। सब काम अपने आप चलेगा। मनुष्य

जितना ही सोचता है, परिस्थितियाँ उतनी ही शीघ्रता से उसके ऊपर आक्रमण करती हैं।

उदय ने संकोच से कहा—अकेला होता तो कोई चिन्ता नहीं थी। बाल-बच्चों की जीविका का भी प्रश्न है।

अरविन्द अभी तक शान्त बैठा था। वह बातें सुन रहा था। वह बोल उठा—साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति का एकाकी जीवन ही अधिक उपयुक्त होता है। आज अकेले होने के कारण ही मैं इन सब झंझटों से अलग हूँ। पिताजी के कई पत्र आ चुके। वे मुझे विवाह के बन्धन में बाँधना चाहते हैं। लेकिन मैं जिम्मेदारी का बोझ उठानेमें असमर्थहूँ।

चन्द्रनाथ ने कहा—विवाह हो जाने के बाद ही तुम्हारी भावुकता का अन्त हो जायगा और फिर तुम्हारी कविता शिथिलता की समाधि बना लेगी।

इसके बाद कुछ देर तक सब लोग जैसे इस जटिल प्रश्न पर विचार करते रहे। सब चुप थे।

उदय ने अपना प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा—आज का मौसम बहुत प्यारा है। अरविन्द अगर कविता सुनावें तो कहीं अच्छा हो। सबने समर्थन किया।

अरविन्द के सामने हारमोनियम रक्खा गया। चन्द्रनाथ तबला ठीक करने लगा। आकाश बादलों को एकत्र कर रहा

था। बूँदे गिरने लगीं। पवन का वेग द्वार बन्द करने लगा। अरविन्द ने अपने मधुर स्वर में गाना आरम्भ किया—

"वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे!
जब सावन-घन सघन बरसते,
इन आँखों की छाया भर थे।"

मुग्ध होकर सब सुन रहे थे। चन्द्रनाथ ठेका भी कुशलता से दे रहा था।

ठीक उसी समय मकानवाला द्वार पर दिखलाई दिया। चन्द्रनाथ उसकी सूरत देखते ही निर्जीव-सा हो गया।

वह कमरे में आकर खड़ा हो गया। चन्द्रनाथ ने साहस से पूछा—कहिए?

उसने कर्कश स्वर में कहा—क्या कहूँ? मकान का किराया देने में आप बहुत परेशान करते हैं। अब मैं किसी तरह नहीं मान सकता।

चन्द्रनाथ ने कहा-रुपया मिलता ही नहीं है क्या करूँ?

उसने ऊँचे स्वर में कहा—तब मकान छोड़ दीजिए। हारमोनियम-तबला बजता है, मौज उड़ती है और मकान का किराया देने को रुपया नहीं है। ऐसे भले आदमी तो मैंने देखे ही नहीं थे। बस हो चुका। तीन दिन के अन्दर मकान खाली कर दीजिए। नहीं तो अच्छा नहीं होगा।

कलाकारों की समस्या ।

वह सम्पूर्ण आनन्द में धूल फेंक कर उसे किरकिरा बनाता हुआ चला गया था ।

चन्द्रनाथ चुप था । यह एक विचित्र समस्या थी ।

× × ×

चन्द्रनाथ ने मकान छोड़ दिया । चलते समय मकानवाले ने कुछ चित्र और सामान लेकर ही सन्तोष किया ।

अरविन्द के पिता का पत्र आया था । उसमें उनकी बीमारी का समाचार था । अतएव वह भी चला गया ।

उदय के संचालकों से झगड़ा हो गया । इस लिए वह भी नौकरी छोड़ कर चला गया ।

इस तरह बरसाती धूप की तरह उनके जीवन का कार्य-क्रम सदैव बदलता रहा ।

उन तीनों के पड़ोस छोड़ देने पर पड़ोस के लोग कुतूहल में थे ।

एक ने कहा—वे सब आवारा थे !

दूसरे ने कहा—सब बहुरुपिया थे !

तीसरे ने कहा—वे सब कुछ सनकी भी थे !

पता नहीं, अब आप क्या कहेंगे ?

घृणा का देवता

"कभी तुम प्यार के आवेश में आकर बहुत सरल बन जाते हो और कभी जङ्गली जन्तु की तरह आक्रमण करते हो? तुम्हारे इस प्यार के रहस्य को समझना कठिन हो जाता है।"—कहते-कहते वह उसकी मुखाकृति देखने लगी।

उसने उसकी आँखों से आँखें मिलाकर कहा—मनुष्य के हृदय में किस समय क्या रहता है, इसे कौन जानता है? मन उस सूखे पत्ते की तरह है, जो पवन की चञ्चल गति में पड़ कर कब जाने कहाँ चला जाता है। रो-रोकर सिसकियाँ भरने वाले दिन मौन होकर किसकी आराधना करते हैं, यह कौन बता सकता है? आज एक साँस में जिस सौन्दर्य-मदिरा को पी जाने की अभिलाषा होती है, कल उसी में कटुता दिखलाई पड़ती है। वासना पैसों से पाली जाती है। जिसे लोग प्रेम कहते हैं, वह धर्माधर्म के आवरण में ढँक जाता है। काल्पनिक जगत में विचरण करनेवाला भावुक, वास्तविक जगत का खिलौना बन जाता है। दुनियाँ की

आँखें मुझे देख कर मेरा तिरस्कार करें, यही मेरी अभिलाषा है ।

उस दिन शरद-पूर्णिमा थी ।

असंख्य मानव-जाति के हृदयों को निचोड़ कर चन्द्रमा प्रकाश उँड़ेल रहा था । चाँदनी उसके समीप बैठी हुई थी । उसकी नस-नस में यौवन का उन्माद भरा हुआ था । मनुष्य अपनी आकांक्षाओं की गठरी बना कर जीवन भर निराशा के पथ पर उसे ढोता रहता है । इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, वासना निर्जीव हो जाती है; लेकिन यह लाखों वर्ष की बूढ़ी चाँदनी आज भी कितने अल्हड़पन से मुस्कुराती हुई, प्रश्न पूछ रही है :

उसने खिलखिला कर उससे पूछा—देखती हूँ, तुम कहीं पागल न हो जाओ ।

उसने उत्तर दिया—पागल होने पर भी यदि शान्ति मिलती ।

× × ×

उसने आकाश की ओर देखा । चन्द्रमा के पास एक सफेद बादल का टुकड़ा मँड़रा रहा था । चाँदनी ने उसकी कालिमा को धोकर उसे उज्ज्वल बना दिया था ।

वह एकटक देखने लगा । किसी समय अपने बचपन के दिनों में उसने इसी तरह के बादल के टुकड़ों को पशु, पक्षी,

पहाड़ आदि की आकृति में बनते-बिगड़ते देखा था। आज केवल एक टुकड़े में वह ऐश्वर्य की रङ्ग-बिरङ्गी पुतलियों की छवि देख रहा था। चाँदनी परदा हटा रही थी। प्रकृति गम्भीरता का आकार बनाए खड़ी थी।

प्रथम किरणें जिस समय आकाश के हृदय पर दौड़ी थीं, उस समय कौन आया था? आज युगों की गोद में बैठनेवाली स्मृति अपनी तालिका दिखा रही थी।

एक के बाद दूसरा, इस तरह कितने ही चित्र सामने आए और विलीन हो गए। रात्रि अपना तीन खण्ड समाप्त कर चुकी थी। सफेद बादल के टुकड़े में घृणा की एक विशाल मूर्ति अपने हाथों से सबको नष्ट-भ्रष्ट करके अटल खड़ी थी।

वह ध्यान से देखने लगा। चाँदनी सन्नाटे की चादर ओढ़ कर बिदा की तैयारी कर रही थी। कुछ देर में यह समस्त प्रकृति का खेल छिन्न-भिन्न हो जायगा। प्रत्येक छाया संसार की नश्वरता की ओर संकेत कर रहा था। कलह और द्वन्द्व का साम्राज्य अपने अस्तित्व को स्थायी बनाने की चेष्टा कर रहा था।

वह हँसा। उस हँसी में भयानकता की आत्मा पुकार रही थी। उसने देखा—रात यों ही जागते ही कट गई है।

इस तरह कितने दिन व्यतीत हुए हैं। अब जीवन का कोई कार्यक्रम नहीं रहा। घृणा की ज्वाला जल रही थी। मनुष्य की चिता जल कर राख हो जाती है; लेकिन यह अनन्त काल तक जलती रहेगी। विश्वासघात, कुटिलता, दूसरे को हाहाकार के पञ्जे में जकड़ देने की कामना यह सब कैसी अद्भुत पहेलियाँ हैं। इनका मनुष्य ने स्वयं निर्माण किया है अथवा विधाता की सृष्टि के साथ ही ये आए हैं ?

प्रभात की लाली ऊपर उठी। चाँदनी शिथिल हो, निशाकर से बिदा लेकर विश्राम के लिए कहीं जा रही थी।

उसकी सम्पूर्ण कहानी सुनने के बाद भी चाँदनी निष्ठुरता के साथ खिसक गई।

सूर्य के प्रखर प्रकाश के साथ वह उठ बैठा। उसकी आँखें लाल थीं। उसने देखा, आकाश झुलसा हुआ था।

सब कुछ इसी तरह नष्ट करके विधाता का विचित्र खेल किस दिन विध्वंस होगा।

× × ×

दिन पर दिन उसका शरीर ढलता चला गया। मानव-समाज से घोर घृणा करते हुए, वह जैसे अपने को ही मिटा देने के लिए तुला हुआ था। बदले की प्रवृत्ति नहीं थी।

डॉक्टरों का मत था कि क्षयी का पूर्ण आक्रमण उसके

ऊपर हो चुका है। उसे अपने कार्यक्रम में परिवर्त्तन करना होगा, अन्यथा उसका अन्त बहुत शीघ्र आनेवाला है। लेकिन उसे इसकी परवाह न थी।

एक दिन उसने निश्चय किया कि अब जीवन का शेष समय किसी पहाड़ पर व्यतीत करना ठीक होगा। नगर के कोलाहल की ध्वनि अनायास ही अपने बाहुपाश में बाँधना चाहती है। झूठी सहानुभूति में स्वार्थ की प्रतिमा अपना विकृत मुँह दिखा रही थी।

उसका दो मास पर्वत-मालाओं के ऊपर व्यतीत हुआ। प्रकृति के मनोरम चित्रों में प्रति दिन वह कुछ अन्वेषण करता।

यहाँ पर भी मनुष्यों ने उसका साथ नहीं छोड़ा। "यह क्षयी का रोगी समस्त वायु-मण्डल दूषित कर रहा है, इसे यहाँ से निकाल देना होगा।" सब सशङ्क होकर उसकी ओर देखते। वह दिन-रात खाँसता रहता।

उस दिन दया की एक मूर्ति उसके सामने आई। उसने कहा—भाई, यहाँ बहुत से लोग अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए आते हैं। तुम्हारा यह रोग उनके लिए घातक हो सकता है। अतएव कृपा करके यह स्थान छोड़ दो।

उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। सन्ध्या समय वह घर से

निकला। एक पत्थर के टीले पर बैठ कर वह सोचने लगा। चारों तरफ पहाड़ घिरे हुए थे। खाई से बादल निकल रहे थे। उसने देखा—पहाड़ की ऊँची रेखाएँ आसमान का आलिङ्गन कर रही थीं। पश्चिमी कोने में सन्ध्या अपनी लालिमा एकत्रित कर रही थी।

वह तन्मय होकर देखने लगा। क्षण भर में खाँसी आई और उसके मुँह से रक्त की धारा निकली, जिसे उदास सन्ध्या अपने साथ लेकर न जाने कहाँ विलीन हो गई!

अभागों का घर

जीवन के सुहावने दिन समय की निष्ठुरता में अपने अस्तित्व को नष्ट कर चुके थे। वर्षों से मन में शान्ति न थी। शरीर अस्वस्थ रहता था। प्रतिदिन की निराश उदासीनता ने मेरी दिनचर्य्या को हाहाकार-मय बना डाला था। जीने में कोई सुख नहीं, फिर भी जीना होगा, रो रो कर जीना होगा, मरने के लिए जीना होगा—ऐसा इस विश्व का नियम है!

मैं अस्पताल के एक कमरे में आराम कुर्सी पर लेटा था। बिजली के प्रकाश में कमरा आलोकित था। रुग्णावस्था में दार्शनिक विचार बहुधा मस्तिष्क के चारों ओर मँडराया करते हैं। मैं इसी तरह की बातों में तल्लीन था। बहुत देर तक सोचता रहा। अन्त में इस निर्णय पर पहुँचा कि यह सब व्यर्थ है। जीवन में दो ही सत्य हैं—प्रसन्न रहना और मर जाना।

इसी समय एक कविता की कुछ पंक्तियाँ मैं गाने लगा—

तुम कनक किरन के अन्तराल में
लुक-छिप-कर रहते हो क्यों?

अभागों का घर ।

द्वार पर खड़ी मिस क्रेंसी ने पूछा—मैं भीतर आ सकती हूँ ?

मैंने कहा—जी हाँ, आइये ।

क्रेसी अस्पताल की नर्स थी । उसकी श्रेणी की अनेकों नर्सें प्रतिदिन "ड्यूटी" बदलने पर मेरा द्वार खटखटाती थीं। मेरी सेवा का भार अनेकों पर था । लेकिन क्रेसी को मेरी विशेष चिन्ता थी । उसकी आंखों से यह प्रकट होता था कि वह प्रतिक्षण यह चाहती रहती है कि मैं शीघ्र ही निरोग हो जाऊँ । उसके सरल और गम्भीर भाव तीव्र गति से मेल-जोल बढ़ा रहे थे ।

क्रेंसी ने मेरे समीप आकर पूछा—आज तो आप प्रसन्न मालूम पड़ते हैं ?

मैंने उसकी ओर देखते हुए कहा—क्यों ?

उसने कहा—इसीलिए कि अभी आप गा रहे थे ।

मैंने कहा—क्या गाने से ही प्रसन्नता की सूचना मिलती है ?

उसने गंभीरता से उत्तर दिया—जब मनुष्य के हृदय में प्रसन्नता गुदगुदाने लगती है, तभी वह गाता है । अथवा वेदना जब हृदय में फूल उठती है, तब वह गीत का हार गूंथने लगती है ।

मैंने कहा—हूँ !

अभागों का घर ।

मैं कई दिनों से उसकी बातों से ही उसको टटोल रहा था। वह भोली और गंभीर थी। दूसरी नर्सों की भाँति बात-बात में हँसना, भाव-प्रदर्शन करना इत्यादि विशेषताएँ उसमें न थीं। मेरे लिए वह एक पहेली बन गई थी। मैं चुप-चाप उसकी ओर देख रहा था।

उसने कहा—आप की दवा का समय हो गया है।

मैंने कहा—ठीक है, लाओ।

उसने कांच के एक छोटे से गिलास में दवा उड़ेली। इसके बाद उसे लाकर मेरे ओठों से लगाया। मैं आखें बन्द किये हुए एक ही सांस में पी गया।

उसने पूछा—दवा कड़वी है—कष्ट होता है?

मैंने कहा—विशेष नहीं।

नित्य का यह नियम था कि आठ बजे मुझे दवा पिला-कर वह चली आती थी। उस दिन का उसका कार्य समाप्त हो जाता था।

२

वर्षा के अन्तिम दिन जाड़े के सूर्य की प्रथम किरणों की प्रतीक्षा में अपनी आँखें बिछाये हुए थे। मेरे उज्वल दिवस विश्राम की चादर ओढ़े, थके पड़े थे। मैं कराहता था, हँसता

था, गाता था । संसार में कौन किसका है ? कौन किसके लिए रोता है ? यह सब कोरी कल्पना है । स्वार्थ की रुलाई निराशा के अन्धकार में डूब जाती है, हम लोग सब भूलने लगते हैं । स्नेह-प्रेम, उत्साह और प्रसन्नता को कुचलता हुआ मनुष्य कहाँ-से-कहाँ चला जाता है ।

आज एक मास से मैं अस्पताल की इसी स्प्रिङ्गदार शय्या पर पड़ा जीवन-मरण के अगणित प्रश्नों का उत्तर-प्रत्युत्तर देता रहा हूँ । कल दिन भर बुखार चढ़ा था । क्रेसी ने बार बार "टेम्परेचर" लिया । उसने उदास आँखों से कई बार मेरी तरफ़ देखा था । मेरी आंखों में ज्वाला थी ।

ज्वर शान्त हो गया था । अकेले बैठे बैठे मन नहीं लगता । अतएव मैं कभी बरामदे में टहलता हुआ अन्य रोगियों की अवस्था देखा करता था । आज तो बड़ी ही भयानक दुर्दशा एक रोगी की देखी—ओह ! उसका मुँह फूल कर फुटबाल हो गया था । उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी । 'स्ट्रेचर' पर लाकर उसे बाहर की शय्या पर सुलाया गया था । मैं उसे देख कर भयभीत हो गया । फिर भी अपने कमरे के द्वार पर खड़ा देखता रहा ।

डाक्टरों का समूह उसकी परीक्षा कर चुका था । आप-रेशन हो रहा था । क्लोरोफार्म से वह बेहोश था । एक डाक्टर

छुरियों से उसका मांस काट कर निकाल रहा था और क्रेसी उसे सहयोग दे रही थी। खून से उसका हाथ लथपथ हो रहा था । मैं काँप उठा। ठीक उसी समय बड़ी मेम निरीक्षण करने के लिए आ रही थीं।

मैंने उन्हें देख कर कहा–गुडमार्निङ्ग, सिस्टर।

उन्होंने मेरे समीप आते हुए कहा–गुडमार्निङ्ग–हाऊ आर यू ?

मैंने बड़ी नम्रता से कहा–अब मैं नीरोग हो रहा हूँ। इस सप्ताह मैं एक पाउण्ड बढ़ा हूँ।

"मुझे प्रसन्नता है"–मुस्कराकर कहते हुए वह आगे बढ़ीं। मैं अपने कमरे में चला आया।

उस दिन संध्या समय क्रेसी मेरे कमरे में आई। मैं कुर्सी पर बैठा था। उसने लोशन की शीशी, हाथ में लेकर मेरे केशों को तर किया। इसके बाद कंघी से मेरे बालों को सँवारने लगी। वह चुप थी।

मैंने आँखें बन्द किये हुए कहा—तुम्हारे कार्यों को देख कर मुझे आश्चर्य होता है! वह कितना भयानक रोगी आया है और तुम कितने साहस से उसकी सेवा करने में तत्पर रही हो। तुम्हारे मुख पर तनिक भी घृणा का भाव प्रकट नहीं होता था। सचमुच तुम बड़ी विचित्र हो।

उसने कहा—यही मेरा जीवन है!

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें गंभीरता का प्रकाश उंड़ेल रही थीं।

मैं चुप था।

उसने फिर कुछ देर सोच कर कहा—सेवा ही हमारी जीविका है।

मैंने कहा—तुम धन्य हो, तुम्हारा ही जीवन सार्थक है।

३

इसी तरह एक सप्ताह और समाप्त हुआ। मैं अब स्वस्थ हो गया था। फ्रेसी के प्रतिदिन के कार्य-क्रम मुझे उपन्यास के परिच्छेद की भाँति आकर्षक प्रतीत होते थे। उसकी जीवन-संबंधी घटनाएँ मेरे मस्तिष्क की खूराक बन गई थीं। नौकरों से जब बातें होतीं, तब उसी की चर्चा! रोगियों से भी जब वार्तालाप होता, तब उसी की प्रशंसा!!

एक दिन एक बूढ़े रोगी ने मुझ से कहा—महाशय, इस छोटी मेम ने मेरी जान बचाई है। क्या ऐसी सेवा घर में अपनी मां-बहन भी कर सकती हैं? भगवान इसका भला करे। मैं जीवन भर इसका गुण गाऊँगा।

उसी समय फ्रेसी वहां आगई। उसने बूढ़े रोगी की तरफ देखते हुए बड़े प्यार से कहा—तुम दिन-भर बातें करते हो?

उसने प्रेम से गद्‌गद्‌ होकर कहा—क्या करूँ, मां, अपना मन बहलाता हूँ।

मैं वहाँ से हट गया। क्रेसी भी अपना काम करने लगी।

वह रोगी क्रेसी को 'माँ' ही पुकारता था। उसके इस सम्बोधन में कृतज्ञता थी—सरलता थी।

दोपहर का समय था। इस समय क्रेसी को थोड़ी देर के लिए अवकाश मिलता था। मैं लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। वह आई। मैंने पुस्तक रखते हुए कहा-क्या आज्ञा है?

उसने कहा—आप समाचारपत्र पढ़ चुके? मैं ले लूं?

मैंने कहा—हाँ, प्रसन्नता से।

उसके मुख की गंभीरता सदैव उदासीनता की खाई में छिपी रहती थी। मेरे लिए यह एक कौतूहल था।

आज साहस कर के मैंने कहा—एक बात पूछना चाहता हूँ, यदि इसे अनुचित न समझो।

उसने कहा—हाँ, पूछिये......

मैंने कहा—यहाँ पर जितनी नर्सें हैं क्या जीवन-भर वे अविवाहित ही रहेंगी?

मेरे इस मूर्खता—पूर्ण प्रश्न पर उसे आश्चर्य हुआ।

उसने कहा—नहीं तो, इन में से अनेक उपयुक्त पति प्राप्त हो जाने पर, अपना विवाह कर लेंगी।

मैंने धृष्टता से पूछा—और तुम ?

उसने कहा—मैं जब भी इस प्रश्न पर विचार करती हूँ, मेरा उत्तर यही होता है कि मैं अविवाहित रह कर ही अपना जीवन व्यतीत करूँगी ।

मैंने उत्सुकता से पूछा—ऐसा क्यों ?

उसने कहा—पुरुषों पर मेरा विश्वास नहीं है, फिर भी उनकी सेवा मेरी जीविका है । मैं बचपन से ही अनाथ हूँ । मेरे पिता का, माँ के प्रति, सदैव ही दुर्व्यवहार रहा है । मेरी माँ का कष्टों में ही अन्त हुआ था । ......कहते-कहते वह चुप हो गई ।

इतने दिनों के परिचय के बाद उसने जैसे अपने हृदय की बात कही थी ।

वह फिर एक शब्द भी न बोली, चुप-चाप मेरे कमरे से चली गई ।

४

तीन वर्ष बीत चुके थे ।

उस दिन महीनों भ्रमण करने के बाद परदेश से मैं घर लौट रहा था । मुगलसराय स्टेशन पर गाड़ी ठहरी । बड़े कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी । कुहरा छाया हुआ था । सूर्य

की किरणें आकाश में फैल रही थीं । मैं 'चाय' पीने के लिए गाड़ी से उतरा ।

सामने ही बगल के प्लेटफार्म पर बाम्बे-मेल खड़ी थी । मुझे वहां एक अपनी परिचित आकृति दिखलाई पड़ी । मैं समीप गया । आश्चर्य से मैंने पूछा—मिस क्रेसी ?

उसने मेरी ओर उसी तरह आश्चर्य से देखा । उसके साथ एक युवा पुरुष भी था ।

मैं भावोन्मत्त होकर कहने लगा—इतने दिनों के बाद तुम्हें देखकर मन होता है कि तुम्हारी गाड़ी में बैठ कर तुम्हारे साथ ही चलूं ।

उसने उस पुरुष की ओर देखते हुए मुझ से कहा—मैंने बहुतों की सेवा से थक कर अब केवल इन्हीं की सेवा का भार लिया है । यह मेरे पति हैं । अब मैं विवाहित हूं ।

वह पुरुष मुस्करा रहा था ।

मैं सचेत होकर दोनों की ओर देख रहा था । सहसा मेरे मुख से निकला—भगवान तुम लोगों को प्रसन्न रखें ।

ठीक उसी समय इंजन ने सीटी दी । गाड़ी चलने लगी खिड़की से वे दोनों रूमाल हिला रहे थे । मैं प्लेटफार्म पर खड़ा रूमाल से उनका उत्तर दे रहा था ।

भविष्य के लिये

१

रामदयाल का पिता बड़ा उद्योगी और व्यवसायी पुरुष था, लेकिन उसका कठिन से कठिन परिश्रम व्यर्थ जाता था। महीने दो महीने में व्यवसाय में जो कुछ पैदा किया, वह एक बार के सौदे में निकल गया। यही क्रम जीवन भर उसके साथ रहा। आज हजारों है और कल भोजन का ठिकाना नहीं। यह सब होते हुए भी बाजार में हजारों का सौदा उसका पक्का माना जाता था। व्यवसायियों में उसकी धाक थी और वह अपनी बात का धनी माना जाता था।

रामदयाल बचपन में ही देश छोड़ कर अपने पिता के साथ व्यवसाय के लिये निकला था। उसकी पढ़ाई लिखाई तो कुछ हुई न थी; लेकिन पिता के साथ रह कर, वह बाजार के भाव का अध्ययन अवश्य करता था। उसकी माता का देहान्त हो चुका था। अतएव घर में अकेला न छोड़ कर, उसका पिता उसे अपने ही साथ रखता था। यही कारण था

कि दिन पर दिन रामदयाल अनुभवी होने लगा। व्यवसायिक प्रश्नों पर कभी-कभी वह अपने पिता के सम्मुख अपनी सम्मति भी प्रकट करता। उसे सचेत भी करता। पिता अपने लड़के से सदैव प्रसन्न रहता। उसे विश्वास था कि उसका लड़का होनहार है।

* * *

एक-दो वर्ष के परिश्रम में रामदयाल के पिता ने कुछ रुपया एकत्रित कर लिया। उसका विचार था कि रामदयाल का विवाह कर के, व्यवसाय उसके हाथों में देकर, वह निश्चिन्त हो जायगा। तब वह ईश्वर की आराधना में अपना अन्तिम समय देगा। इसी उद्देश्य से उसने रामदयाल का विवाह भी पक्का कर लिया और एक दिन बड़ी धूमधाम से रामदयाल का विवाह हो गया। विवाह में नगर के प्रतिष्ठित व्यवसायी सम्मिलित हुए थे।

अब घर गृहस्थी बस गई थी। रामदयाल के पिता की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

विवाह हो जाने के बाद, बहुत दिन बीत गये। फिर भी रामदयाल के पिता के मन में शान्ति नहीं हुई। उसने यह सोचा कि अब व्यवसाय की गति बढ़ानी चाहिये, जिसमें जल्दी ही कुछ रुपया और एकत्रित कर के रामदयाल के

ऊपर सम्पूर्ण जिम्मेदारी छोड़ कर, वह निश्चिन्त रह सके। वह लम्बा सौदा करने लगा। दिन-रात अपने व्यवसाय की धुन में रहता। सैकड़ों की बात नहीं, हजारों के हेर-फेर में व्याकुल रहता। उसे भोजन और स्नान तक के लिए भी अवकाश नहीं मिलता था।

एक दिन शोक और निराशा की मूर्ति बन कर वह घर आया। चुपचाप अपने कमरे में शिथिल होकर पड़ रहा। उस दिन उसने भोजन भी नहीं किया।

रामदयाल ने पूछा—बाबा, क्या बात है? कुछ तबीयत खराब है क्या?

वह अपना मुँह ढँके हुए पड़ा था। रामदयाल को बहुत देर से खड़ा देख कर उसने कहा—सर्वनाश हो गया, इस बार चाँदी के सौदे में पचास हज़ार का घाटा हुआ।

रामदयाल स्तब्ध हो कर सुनता रहा। उसे अपना भविष्य बड़ा अन्धकार-मय प्रतीत हुआ। कुछ देर विचार करने के बाद उसने कहा—अच्छा, कोई चिन्ता नहीं। उठो बाबा, देखा जायगा। भाग्य में जो होता है, उसे कौन टाल सकता है?

अपने पुत्र की इतनी विचारशील बातों को सुन कर बूढ़े को सन्तोष तो अवश्य हुआ; लेकिन उस दिन से वह अपना

पलङ्ग न छोड़ सका। उसकी सब शक्तियाँ विश्राम करने लगीं। उसे विश्वास हो गया कि उसका अन्तिम समय समीप आ गया है। उसने रामदयाल को बुलाकर कहा—बेटा, जिनका देना है, उन्हें बुला लो, आज मैं तुम्हारे सामने उनसे कुछ कहूँगा।

रामदयाल ने पिता की आज्ञा का पालन किया। सब लोग बूढ़े के सामने बैठे थे। उसनें रामदयाल की ओर देखते हुए कहा—बेटा, मेरा अन्त हो रहा है, मेरे बाद इन लोगों का पैसा पाई-पाई चुकता करना। यही व्यवसायियों का नियम है। मैं नहीं चुका सका, लेकिन मुझे विश्वास है कि तुम इसे पूरा करोगे।

इतना कह कर उसने उन बैठे हुए लोगों की ओर देख कर कहा—भाई, मेरे लड़के पर दया रखना, यह आप लोगों के रुपये परिश्रम से चुका देगा।

व्यवसायियों के साथ रामदयाल के पिता का ऐसा व्यवहार था कि वे बोल उठे—कोई चिन्ता नहीं है, आप निश्चिन्त हो कर भगवान का नाम लें।

इस घटना के दो दिन बाद, बूढ़े की मृत्यु हुई। रामदयाल ने सम्पूर्ण जिम्मेदारी लेकर अपने भविष्य का एक नया मार्ग खोजना आरम्भ किया। इतने रुपये वह कैसे देगा? यह

भविष्य के लिये।

एक कठिन समस्या थी।

२

पिता की मृत्यु के. पश्चात, रामदयाल बड़ा गम्भीर हो गया। उसने देखा पैसों के नाम पर कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। अपने जीवन के वह ढाई युग बिता चुका था, किन्तु ऐसे वायु-मंडल से उसका परिचय न हुआ था। वह सदैव अपने पिता के भरोसे ही रहता था। आज अपने ऊपर इतना बड़ा बोझ लेकर वह कैसे चलेगा? उसके लिए यह साधारण समस्या नहीं थी। फिर भी वह नियमित रूप से अपना कार्य करता रहा।

उसमें कोई दुर्गुण भी नहीं था। वह किसी तरह के नशे में नहीं फँसा था। यहाँ तक कि पान-तम्बाखू से भी दूर रहता था। दूसरों की स्त्रियों के प्रति कभी उसे आकर्षण नहीं होता था।

* * *

पांच वर्ष बीत गये थे और अब तक वह पिता के ऋण का केवल चौथाई हिस्सा ही अदा कर सका था। अब उसे अपनी सन्तान के भविष्य की चिन्ता सताने लगी थी। इस तरह तो बीस वर्ष में भी वह ऋण से मुक्त नहीं हो सकेगा और एक दिन अपने पिता की तरह खुद भी चल बसेगा।

फिर क्या उसका लड़का भूखा मरेगा? भीख मांगेगा? आवारों की तरह इधर-उधर भटकेगा? ये विचार सदैव ही उसके मस्तक में मंडराया करते थे।

रामदयाल अपने पिता की तरह लम्बा सौदा भी नहीं कर सकता था, क्योंकि उसमें हानि की भी सम्भावना थी। निराश होकर एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहा—देखता हूँ, इस संसार में अच्छे रास्ते चल कर धन नहीं संचित कर सकता। इस तरह परिश्रम करके तो आदमी गधा बन जाता है और फिर भी उसे चैन नहीं। पिता के ऋण को उसका लड़का भरे यह कैसा अन्याय है?

रामदयाल की पत्नी कष्ट में अपने दिन बिता रही थी। घर का सब कार्य वही करती थी। केवल पैसे बचाने के लिये, और अपने पति को प्रसन्न रखने के लिए ही उसका ऐसा क्रम था। पति को ऐसी बातें कहते देखकर वह उसे टटोलना चाहती थी। उसने कहा—तब क्या किया जाय?

रामदयाल ने अपने सर पर हाथ फेरते हुए कहा—अब तो यह शहर छोड़कर चले जाने से ही छुटकारा मिल सकता है।

उसकी पत्नी ने कहा—ऐसा करना कहां तक ठीक होगा? आप ही समझें।

रामदयाल विचार में निमग्न होकर घर से बाहर किसी कार्य से चला गया।

इसी तरह दिन बीत रहे थे।

कई महीने बाद, अपनी पत्नी और पुत्र को साथ लेकर, रामदयाल दूसरे शहर में चला गया।

२

बीस वर्ष बाद।

आकांक्षाओं की विशाल समाधि पर बैठ कर भी मनुष्य अपने सन्तोष से शान्त नहीं हो पाता। रामदयाल ऐसे ही लोगों में था। इस नवीन नगर में वह विख्यात व्यवसायी बन गया था। उसकी कोठी चलती थी, उसकी गल्ले की कई आढ़तें थीं। देखते-देखते वह लखपती बन गया। लोगों को आश्चर्य था। आज इतने पैसों को लेकर भी वह दुखी रहा करता है। जी जान से परिश्रम करके जो धन उसने पैदा किया था, उसका इस तरह से दुरुपयोग देखकर वह अपने भाग्य को कोसता है। उसका पुत्र आवारा निकल गया। व्यवसाय की ओर उसका ध्यान नहीं था। वह सदैव ही मित्र मंडली के साथ ताश खेलता—वेश्याओं के घर पर पड़ा रहता। ऐसा ही उसका क्रम था।

भविष्य के लिये।

रामदयाल का स्वास्थ्य भी खराब हो गया था। वह प्रायः बीमार ही रहता। उसके व्यवसाय का सब प्रबन्ध कर्मचारी लोग ही करते थे। वह अपने कमरे में पलंग पर पड़ा, अपने भविष्य को अपनी ही आंखों से देख रहा था।

रात्रि का समय था। रामदयाल का पुत्र इतनी रात को घर लौटा था। उसकी मां, उसकी प्रतीक्षा में अब तक बैठी थी। रामदयाल सो गया था। लड़के ने आते ही मां से कहा—पांच सौ रुपये अभी दे दो। आवश्यकता है जल्दी करो।

उसकी माँ आश्चर्य से उसकी ओर देख रही थी। उसने कहा—अभी कल तुम दो सौ रुपये ले गये हो। अब इतनी रात को क्या जरूरत है?

लड़के ने रोब से कहा—यह तुम जान कर क्या करोगी? मुझे रुपये चाहिये, मैं बात करना नहीं चाहता।

उसकी माँ चुप थी। वह सामने खड़ा था। वह अपने को न सम्हाल सका, उसने माँ से ताली छीन कर 'सेफ' से रुपये निकाले। माँ रोने लगी। कोलाहल हुआ। रामदयाल की नींद खुल गई। लड़का रुपये लेकर घर से बाहर चला गया था।

रामदयाल ने अपनी पत्नी से पूछा—क्या हुआ? उसकी पत्नी ने आंचल से आंसू पोंछते हुए कहा—मार-पीट कर रुपये लेकर चला गया।

भविष्य के लिये।

रामदयाल ने निराशा भरे शब्दों में कहा—हम लोगों का भाग्य ही ऐसा है। सम्पूर्ण जीवन धन के लिए ही हाय हाय करते बीता। सोचा था, वृद्धावस्था में शान्ति मिलेगी लेकिन.........।

उसकी पत्नी ने कहा—आज यह धन ही दुख और चिन्ता का कारण बन गया है। यह न होता तो हम लोग अधिक सुखी रहते।

इस घटना के एक वर्ष बाद, रामदयाल इस संसार से चल बसा। मरते समय उसने अपनी पत्नी से कहा था-पिता का ऋण चुकाना जब पुत्र के लिये अन्याय है, तो पिता का उपार्जित धन नष्ट करना क्या पुत्र का कर्तव्य होगा ?

रामदयाल की स्त्री उसी प्रश्न को बार बार अपने पुत्र से दोहराती है, लेकिन उसकी समझ में यह प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता। वह कहता है-भगवान जिसको जितना देता है, वह उसे मिलता है। मनुष्य की क्या शक्ति कि किसी को कुछ दे ?

कहानी साहित्य की अनमोल पुस्तक !

विनोदशंकर व्यास की ४१ कहानियां ।

पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य दो रुपये

व्यास जी की कहानियों का यह सुन्दर संग्रह हिन्दी संसार ने खूब पसंद किया है। आपने यदि अब तक न पढ़ा हो तो अवश्य पढ़िये।

"कर्मवीर"—श्रीयुत विनोद शंकर व्यास उस स्कूल के यशस्वी लेखक हैं, जो घटनाओं की अपेक्षा भावों को अधिक मान देता है।

"भारत"—पं० विनोदशंकर व्यास अपनी भाव पूर्ण, मार्मिक एवं मौलिक कहानियों के लिये प्रसिद्ध हैं।

"विश्वमित्र"—व्यासजी हिन्दी के एक अच्छे कहानी-लेखक माने जाते हैं।

"स्वदेश"—व्यास जी अपनी छोटी कहानियों के लिये हिंदी जगत में प्रसिद्ध हैं।

"मनसुखा"—व्यास जी हिन्दी के गल्प लेखकों की नाक हैं।

"प्रेमचंद"—आपकी भाषा में चोट होती है और चित्र कुछ ऐसे Elusive होते हैं, मानो स्वप्नचित्र हैं और इसी लिये उनमें रोमानी झलक होती है।

"मैथिली शरण गुप्त"—आपकी लेखनी में मुझे गति मालूम पड़ती है। स्वच्छन्दतापूर्वक तोड़े लेकर जब वह अपनी ताक पर आकर, अचानक रुकती हैं, तब भी मानो अपने आवेश के कारण वह चंचल रहती है, वेग संभालने में भी एक मुद्रा बन जाती है। मैंने आपकी रचना से आनंद प्राप्त किया है, इसीलिये इसका अभिनंदन करता हूँ।

"श्री०पी०श्रीवास्तव"—घड़े में समुद्र की कहावत को

सुनता था, मगर भाव समुद्र तो आपकी कहानी रूपी घड़ों में अच्छी तरह से देख रहा हूँ। कला और शैली तो आपही छलकी पड़ती है। बस दिल खोल कर बधाई देता हूँ।

विशंभरनाथशर्मा "कौशिक"—व्यास जी छोटी २ कहानियां लिखने में सिद्ध हस्त हैं।

B. L, Sahany, Professor of English Benares Hindu University—I have read almost every short story of Pt. Vinod Shanker Vyas, and I have no hesitation in saying that he is by far the greatest lyrical short story writer in India to-day.

Poineer—Pt. Vinod Shanker's stories have a charm of their own. They are usually shorter than the general run of short stories. But in that little space he weaves some clever plots giving them a touch of genius.

Leadar—Pt. Vinod Shanker Vyas has already acquired a name as one of the most promising of the younger writers of short stories in Hindi world.